अध्याय चतुर्थ

धर्म और आचार

धर्म और आचार

धर्म --

कबीरदास के अनुसार धर्म मानव को मानव बनाता है। वह एक दूसरे की सहायता करना सिखाता है। परस्पर त्याग की भावना बढ़ाता है और प्रेम पैदा करता है।

धर्म के लक्षण --

किसी वस्तु के स्वरूप को बतलाने वाले विशेष चिन्ह ही उसके लक्षण कहलाते हैं। धर्म के स्वरूप को जानने के लिये उसके दस लक्षणों को जान लेना जरूरी है। ' मनुस्मृति ' के निम्न श्लोक में ये दस लक्षण दिए गए हैं ----

> " धृति : क्षमा, दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह :
> धी विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।। "[१]

धैर्य, क्षमा, दम, (मन को रोकना) अस्तेय, (चोरी न करना) शौच, (बाहर-भीतर से शुद्धि) इंद्रिय निग्रह धी (शास्त्रों का ज्ञान) विद्या, सत्य, (सच बोलना) अक्रोध (क्रोध न करना) मनु के अनुसार धर्म के ये दस लक्षण हैं।

धर्म के इन दस लक्षणों का पालन करने से ही मनुष्य सच्चे अर्थों में धार्मिक हो सकता है। सभी सभ्य देशों का दण्ड विधान इन्हीं पर आधारित है।

एक अर्थ में कबीर ने मनुस्मृति के उपर्युक्त गुणों का प्रचार और प्रसार भी किया है। स्वयं कबीर ने इन गुणों को इसी संसार से ग्रहण किया था और लोगों से ग्राह्य भी कराया था। वे जिन्दगी भर गुणों की तलाश में लगे थे और जन-भाषा में इन गुणों का प्रचार भी कर रहे थे। वे समाज में प्रचलित व्यावहारिक भाषा के माध्यम से लोगों के व्यवहार को बदल रहे थे। उनका कहना था कि सत् - संगति ही इस जीवन का सार है बाकी सब कुछ असार। मनुष्य का मनुष्य से सद्-व्यवहार ही सच्चा धर्म है।

कबीर का धर्म —

कबीर निर्गुणवादी थे। कबीर चरित्र के पुजारी थे, आचरण पर उनका बल था। वे अव्यक्त के प्रति आस्थावान थे, परन्तु व्यक्त के प्रति उनकी भक्ति भावना थी। वे कट्टर धार्मिक थे, परन्तु उनका धर्म सम्प्रदायवाद के विरोध में था। वे सब में उस परम सत्य का साक्षात्कार करते थे। समदृष्टि उनकी साधना की कसौटी थी। वे वर्ण-जाति के भेद के विरोधी थे।

कबीर ने गुरु को भगवान से भी अधिक महत्व दिया था। उन्होंने रूढ़ियों और आडम्बरों का विरोध किया। कबीर उन पंडित-मुल्लाओं की निन्दा करते थे, जो शास्त्र की बात तो करते थे, पर उसके विपरीत उनका आचार था। कबीर का बल गुरू पर था, सत्संग पर था, जिससे उन्हें ज्ञान का प्रकाश मिला।

कबीर की धर्मप्राणता —

कबीर धार्मिक कवि थे। उनके समय धर्म व्यक्ति के केन्द्र में था। उस समय जो कुछ हो रहा था, वह या तो धर्म के कारण था अथवा तत्कालीन शासक के। कविता भी धर्म संबंधी थी। कबीर भक्त थे। भक्ति और धर्म का चोली-दामन का साथ होता है। मानव प्राणी धर्म जैसे शाश्वत मामले में भी इतना खुदगर्ज है कि उसे धर्म में भी फर्क नजर आता है। अगर जोड़ने वाला ही धर्म को तोड़ेगा तो फिर उसे जोड़ेगा कौन ? धर्म तो इन्सानों को आपस में मिलाता है। धर्म से उनमें एक सार्वभौमिक दृष्टि उपजती है। उससे व्यक्ति दूसरों के लिए सुख को भी छोड़ना सीखता है।

कबीर ने बहुत नजदीक से व्यक्ति में उतर आई धर्महीनता को देखा था और अपनी तीक्ष्ण बुध्दि से उसे अनुभव भी किया था।

तत्कालीन धर्म व्यक्ति को बंधन रहित नहीं कर रहा था, बल्कि उसे बन्धनों में बुरी तरह जकड़ता जा रहा था। कबीर को भला यह कैसे अच्छा लगता ? वह कैसे इस विष को समाज में फैलते - पनपते देखते ? कबीर की वाणी की गर्जना हुई।

धार्मिक मुस्टंडे होश में आए, पर उन्हें वह सब बेहद नागवार लगा। कबीर ने तो सीधे ही उनकी रोजी-रोटी और ऐश-आराम पर ही लात मारी थी। मन्दिर को पंडिताई को रौंदा था और मस्जिद के बहरेपन को जग-जाहीर किया था। इन्सानी ताकत को तमाशाई बनाने वाली साजिश के कारिन्दों को कबीर ने सब के सामने चौराहे पर नंगा कर दिया था।

कबीरदास ने धर्मान्धता का विरोध किया है। उन्होंने धर्म में फैलती हुई साम्प्रदायिकता को नकारा है। वह मानवतावादी धर्म के पक्षधर थे। धर्म व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ता है। उनमें प्रगाढ़ता पैदा करता है और ऐसी स्थितियाँ पैदा करता है, जिसमें सब परस्पर प्रेमबद्ध होकर रहने लगें। कबीर ने देखा और अनुभव किया कि धर्म ही व्यक्ति को व्यक्ति से काट रहा है। उसमें एक दूसरे के प्रति घृणा पैदा कर रहा है और वही उनको एक-दूसरे की जान का दुश्मन बना रहा है। इन्सान विकृत धर्म की कैद में पड़ा हुआ था और पंडित, मुल्ला आदि उसे धर्म की वेदी पर बकरा समझ कर चढ़ा रहे थे। कबीर ने मनुष्य को शाश्वत धर्म की ओर आकृष्ट किया था और जातिवाद को जन्म देने वाले धर्म के प्रति उपेक्षा बरतने की शिक्षा दी थी।

कबीर के युग में साम्प्रदायिकता कमाल की थी - जातीय कट्टरता थी और संकीर्णता थी। खाने-पीने में परहेज था। हिन्दू शूद्र से घृणा करते थे। उसके हाथ का छुआ नहीं खाते थे। ब्राह्मण अपने को सर्वोपरि मानते थे। कबीर ने इस पर तीखा व्यंग्य कसा है -----

" एकै पवन एक ही पाँनी, करी रसोई न्यारी जाँनी।
माटी सूँ माटी ले पोती, लागी कहो धू छोती ।। "[2]

शूद्र और ब्राह्मण के भेद - भाव को नि:सार सिद्ध करते हुए कबीर ने कहा है ----

" हमारे कैसें लोहू तुम्हारे कैसे दूध।
तुम्ह कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद ।। "[3]

कबीर ब्राह्मण को संबोधकर कहते हैं कि स्पृश्यास्पृश्य का विचार निरर्थक है। ब्राह्मणी के स्तन से निकलने के कारण दूध दूध और शूद्रा - के स्तन से निकलने के कारण दूध लहू नहीं समझा जाता।

उन्होंने मूर्तिपूजा का भी विरोध किया, क्योंकि मूर्ति की पूजा करनेवाले इन्सान को दुतकार रहे थे। इसलिए कबीर ने उपयोगिता को दृष्टि में रखते हुए मूर्तिपूजा के विरोध में कहा है —

' पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार।। '[४]

कबीरदास कहते हैं कि अगर पत्थर पूजने से भगवान मिलते हैं तो मैं पर्वत पूजूँगा। इन मूर्तियों के पत्थर से तो घर की चक्की भली, जिसका पीसा आटा लोग खाते हैं और जिन्दा रहते हैं।

इसी प्रकार उन्होंने तीर्थ-व्रत आदि का भी विरोध किया। कबीर का यह दृष्टिकोण उनके व्यावहारिक रूप को देखकर बना था। उन्होंने स्पष्ट कहा है —

' तीरथ में तो सब पानी है होवे नहीं कुछ अन्हाय देखा।
प्रतिमा सकल तो जड़ है भाई, बोले नहीं बोलाय देखा।
पुरान कोरान सबै बात है, या घट का परदा खोल देखा।
अनुभव की बात कबीर कहै यह, सब है झूठी पोल देखा।। '[५]

' पवित्र तीर्थ स्थानों में केवल पानी है मैं जानता हूँ वे तीर्थस्थान व्यर्थ हैं, क्योंकि मैं उन तीर्थों के पानी में नहा आया हूँ। तीर्थों की सारी मूर्तियाँ बेजान हैं, गूँगी हैं। मैं जानता हूँ क्योंकि मैंने उन्हें चीख-चीख कर पुकारा है। पुराण और कुरान निरे शब्द हैं, परदा उठाकर मैंने देखा है। कबीरदास अपने शब्दों के अनुभव से बोलता है, क्योंकि उसे अच्छी तरह पता है कि बाकी सब बातें झूठी हैं। '

हिन्दू धर्म की भाँति मुसलमान धर्म में भी परम्परागत रीति-रिवाजों का प्रचलन था। इस धर्म में भी अनेक पाखण्ड विद्यमान थे। इस धर्म में खुदा के नाम पर

मस्जिद जाना और चिल्लाना, मक्का-मदीना की तीर्थयात्रा करना , मरने पर दफनाना और कब्र बनाना, मूर्ति पूजा का खण्डन करना इत्यादि हिन्दुओं के विपरीत कार्य करने में विश्वास रखना, बहिश्त, कयामत आदि में विश्वास रखना आदि ऐसे पाखण्ड उनके साथ जुड गए थे, जिसके कारण सामाजिक एकता नहीं रही थी । इन पाखण्डों की मध्यकाल में पूर्णतया वृद्धि हो गयी थी ।

मुसलमानों के ये सब कर्म काण्ड दूसरे धर्मों से पूर्णतया भिन्न थे, जिसके कारण जन-जीवन में धार्मिक भेद-भाव की भावना प्रबल हो उठी थी । इस काल में हिन्दू मुसलमान का धर्मगत भेद ज्यादा था, जिसके कारण दोनों में संघर्ष हुआ करते थे । कबीर दोनों के धर्म एवं जाति-पाँति से परे थे, इसलिए उन्होंने जो कुछ कहा है, दोनों के लिए कहा है । वे हमेशा ज्ञान या विचार को महत्व देते थे । उनका कहना था कि हिन्दू वही है मुसलमान वही है, जिसका ईमान ठीक है ।

कबीर ने मानव धर्म की स्थापना की है । उनके धर्म में आडम्बर नहीं है भेद नहीं है और न जटिलता ही है । वह सर्वसुलभ धर्म है । कबीर की निम्न उक्तियों से यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है ––

" कबीरा सोई पीर है जो जाने सब पीर ।
जो पर पीर न जानई सो काफिर बे पीर ।। "[6]

उन्होंने कहा है कि साधु, फकीर या अच्छा पुरुष वही है जो सब की पीड़ा का अनुभव करता है । जो दूसरों की पीड़ा को नहीं समझता वह काफिर है, निष्ठुर है ।

कबीर निर्गुण भक्त कवि थे । उनका निराकार में विश्वास था । कबीर ने उस निर्गुण का वर्णन इस प्रकार किया है ––

" दास कबीर राम के सरने छाड़ी झूठी माया ।
गुरु प्रसाद साध की संगति, तहाँ परम पाया ।। "[7]

कबीर ने राम की शरण लेकर झूठी माया का त्याग कर दिया था ।

क्योंकि माया ही भक्ति या भजन में बाधक है। गुरु के प्रसाद से उनका परमात्मा से मिलन हुआ। अर्थात् गुरु के द्वारा उन्हें जो राम-राम शब्द मिला था, उसी के प्रयोग से वह भगवान तक पहुँच सके।

कबीर ने स्पष्ट शब्दों में जाति व धर्म की विभिन्नता को अस्वीकार करते हुए कहा है ---

`पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ, एक निराकार हिरदे नमसकारूँ।
नाँ हज जाँऊँ न तीरथ पूजा, एक पिछाँण्या तो का दूजा।।
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूं मन लागा।।`8

कबीरदास कहते हैं, मैं न किसी देवता की पूजा करता हूँ और न मस्जिद में जाकर नमाज ही पढता हूँ। मैं तो एक मात्र निराकार परमात्मा को हृदय में धारण करके नमस्कार करता हूँ। न मैं हज (मक्का) जाता हूँ और न तीर्थों में जाकर पूजा ही करता हूँ। अब मैंने एक परमतत्व पहचान लिया है, तब फिर अन्य किसी देवता अथवा किसी साधना की मुझे क्या आवश्यकता है ? कबीरदास कहते हैं --- `मेरे समस्त भ्रम नष्ट हो गए हैं और एक मात्र तत्व निरंजन में मेरा हृदय रम गया है।`

उनका विश्वास था कि बिना आन्तरिक पवित्रता के हरि नहीं मिल सकता। यही आन्तरिक पवित्रता और जन-जीवन के साथ सद्व्यवहार कबीर की भक्ति का मूल रूप है।

कबीर के समय के समाज में धार्मिक क्षेत्र में जो दु:स्थिति थी, उसके दर्शन से कबीर का मन व्यथित हुआ। हिन्दू और मुसलमान दोनों गुमराह थे। पंडित - पुजारी और मुल्ला-मौलवी सभी धर्म के ठेकेदार ही अपने-अपने स्वार्थ के उद्देश्य से निरीह जनता को लूट रहे थे, उसे गुमराह कर रहे थे। इसी कारण कबीर ने प्रस्तुत पद में स्वयं का धर्माचरण स्पष्ट कर दिया है जिससे तत्कालीन समाज-दर्शन का स्पष्ट पता चलता है।

कबीर की स्पष्टोक्ति है कि जल में स्नान मात्र से मुक्ति की प्राप्ति हो जाए, तो मछली नित्य ही जल में स्नान के कारण मुक्त हो गई होती, किन्तु मीन और जीव दोनों ही स्नान से मुक्त नहीं हुए हैं। इसलिए सभी जीव बार बार

आवागमन के चक्र में पड़ विभिन्न योनियों में भ्रमित होते हैं। जो मन में पाप रखते हुए तीर्थस्थान करता है, वह स्वर्ग लाभ नहीं कर सकता। समस्त जगति पाखण्ड और ढोंग कर भ्रमित हो रही है। किन्तु प्रभु अज्ञानी नहीं है। वह सब कुछ देखता है। उसी के चक्षु के सामने ही मानव समस्त कुकर्म करता है। उससे कुछ भी अदृश्य नहीं है। अपने इन विचारों से कबीरदास ने न केवल तत्कालीन समाज का सही चित्र खींचा है, बल्कि सच्चे धर्म से पथभ्रष्ट होने वालों को सही मार्गदर्शन भी किया है।

कबीरदास ईश्वर की सच्ची अनुभूति को महत्व देते हैं और तीर्थस्थानों की चली आयी महत्ता की व्यर्थता स्पष्ट करते हुए कहते हैं ——

क्या काशी क्या मगहर ऊसरा।
(जोपै) हृदय राम बसु मोरा ।।
जो काशी तन तजहिं कबीरा।
(तो कहु) रामहिं कवन निहोरा ।।[१]

अगर काशी में या मगहर में कहीं भी कबीरदास ने देहत्याग किया तो क्या हुआ ? क्योंकि उनके राम तो उनके हृदय में ही बसते हैं और इसीलिए काशी में अगर शरीर-त्याग किया तो राम का काम ही क्या रहेगा ? वह तो अपने भक्त का उद्धार काशी में भी करता है और मगहर में भी करता है। भावार्थ यह है कि मगहर में भी शरीर त्यागने पर मुक्ति मिल ही जाती है, बशर्ते कि उसके हृदय में राम बसते हो।

कबीर ने मानवीय गुणों को धर्म माना है। उनका निर्गुण ब्रह्म भी उन गुणों से युक्त है। वह सत्य को महत्व देते थे। उनकी भक्ति ही उनकी दृष्टि में धर्म था —— सर्वोपरि धर्म।

कबीर ने धर्म में भक्ति मार्ग को अपनाया है। भक्ति मार्ग ही जीवन-धर्म के रूप में स्थापित होता है। कबीर यह भली भाँति जानते थे कि धर्म का विकृत रूप मनुष्य को मनुष्य से अलग कर रहा है। उन्होंने सभी धर्म के लोगों को समझाने का प्रयास किया।

वह तो सत्य धर्म के अनुयायी थे। वह हरेक को सत्योन्मुखी होने की प्रेरणा देते थे। उन्होंने स्पष्ट कहा है —

" सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै सांच है, ताके हिरदै आप ।। "[१०]

कबीरदास कहते हैं कि सच के बरारबर तप नहीं है और झूठ के बरारबर पाप नहीं है। जिसके हृदय में सच है, उसके हृदय में प्रभु का निवास होता है। भाव यह है कि सच से ही ईश्वर को पाया जा सकता है।

कबीर क्षमाशीलता के पक्ष में थे। छोटों की गलतियों को क्षमा करने की प्रेरणा वे देते थे। बड़े वे हैं, जो छोटों को क्षमा कर सकें।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ कबीर ने धर्मान्धता की निंदा की है, वहाँ पर उन्होंने सहज मानवीय गुणों की स्थापना भी की है। मानवीय गुण हरेक के लिए उपयोगी है। वह जानते थे कि हिन्दू तथा मुसलमान सच्चे धर्म को नहीं जानते। उनकी आपस में लड़ाई अज्ञान के कारण है।

<u>आचार</u> —

हमारे यहाँ अच्छे व्यवहार को ही आचार कहा गया है। जिससे हमारे खुद का और सारे संसार का भला हो यही " आचार " है। ऐसे आचार को सदाचार कहते हैं, जिसमें सच्चाई और आदर्श के साथ जीवन बिताना होता है। इसलिए चरित्र और आचार को सभी धर्मप्राण महात्माओं ने सबसे बड़ा समझा है। शील धर्म और सच्चाई यहाँ रहती है, वहाँ सुख समृद्धि का निवास होता है।

<u>कबीर के आचार संबंधी विचार</u> —

कबीर स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। उनके चारों ओर शारीरिक दासता का घेरा पड़ा हुआ था। वे इस बात का अनुभव करते थे कि शारीरिक स्वातंत्र्य के पहले विचार स्वातंत्र्य आवश्यक है। उनका कहना है जिसका मन ही दासता की बेड़ियों से जकड़ा हो, वह पाँवों की जंजीरें क्या तोड़ सकेगा ? उन्होंने देखा था कि

लोग नाना प्रकार के अंधविश्वासों में फंसकर हीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं इसलिए उन्होंने लोगों को इसीसे मुक्त करने का प्रयत्न किया।

मुसलमानों के रोजा, नमाज, हज और हिन्दुओं के श्राध्द, एकादशी, तीर्थव्रत, मन्दिर सब का उन्होंने विरोध किया है। कर्मकाण्ड की उन्होंने बहुत निन्दा की है। इस बाहरी पाखंड के लिये उन्होंने हिन्दू-मुसलमान दोनों को खूब फटकारें सुनाई हैं। धर्म को वे आडंबर से परे एकमात्र सत्य सत्ता मानते थे, जिसके हिन्दू-मुसलमान आदि विभाग नहीं हो सकते। उन्होंने किसी नामधारी धर्म के बंधन में अपने आपको नहीं डाला और स्पष्ट कह दिया है कि मैं न हिन्दू हूँ, न मुसलमान।

जिस सत्य को कबीर धर्म मानते है वह सब धर्मों में है, परन्तु इस सत्य को सभी ने मिथ्या विश्वास और पाखंड से अलग कर दिया है। इस बाहरी आडंबर को दूर करने से धर्म-भेद के समस्त झगड़े-बखेड़े दूर हो जाते हैं, क्योंकि उससे वास्तव में धर्म-भेद ही नहीं रह जाता। फिर तो हिन्दू-मुस्लिम - ऐक्य का प्रश्न खुद ही हल हो जाता है।

" कबीर ने मुक्त किया छत्तीसों परजा-पावन को धोबी-नाई, कुम्हार, दरजी, कोरी सब को छूट मिली भगवद भक्ति की। राम के सम्मुख कोई जाति नहीं। सब का एक ही पिता है निरंजन। सब अपनी माँ से पैदा होते हैं, सब समान हैं — यह तो लोकाचार है, जो जाति बंधन डालता है। भक्ति आन्दोलन की यही देन है। कबीर की यही देन है। कबीर इसलिए भक्त पहले कवि बाद में हैं।" [११]

धन, सम्पति सम्बन्धी कबीर के विचार —

धन, वैभव की जीवन के लिए असीम उपयोगिता है। धन से जीवन की लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। जीवन यापन के लिए धन अनिवार्य तत्व है, किन्तु जीवन में धन-लिप्सा अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाती है, तब वह हानिप्रद और दु:खदायी होती है। कबीर धन संपदा को जीवन यापन के लिए अनिवार्य तत्व मानते हैं। परन्तु वे अत्यधिक धन संचय करने के पक्ष में नहीं है। उन्होंने स्पष्ट कहा है —

" साँई इतना दीजिए, जामें कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधू भी भूखा न जाय।।" [१२]

दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति भले प्रकार हो सके तथा आतिथ्य सत्कारादि का पालन किया जा सके और साधु जन की सेवा की जा सके इतना पर्याप्त धन प्रत्येक के पास होना चाहिए ऐसा उनका मत था ।

कबीरदास के अनुसार मनुष्य को आरामदायक तथा विलासिता के पदार्थों की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन पदार्थों से मनुष्य आलसी, विलासी तथा आराम पसंद हो जाएगा और जीवन ध्येय की प्राप्ति न कर सकेगा ।

कबीर को धन संचय की कोई आवश्यकता नहीं थी । एक दिन के भोजन की जितनी आवश्यकता होती थी, उससे अधिक उन्हें नहीं चाहिए था । उनका मूल " पेट समाता लेई " का था । यदि भगवान टेक रख ले तो अपने मालिक से भी माँगना भला नहीं, क्योंकि माँगना वस्तुत: मृतक के समान है ।

" मांगण मरण समान है, विरला बंचै कोई ।
कहै कबीर रघुनाथ सूँ, मतिर मँगावै मोहि ।। " [१३]

धन संचय के सम्बन्ध में कबीर का विचार है कि धन की प्रवृति स्थिर नहीं होती । वह चंचल होता है और चंचलता ही उसकी परिभाषा है । वह अपने पास से चली जानेवाली वस्तु है । अत: ऐसा धन नहीं जोड़ा जा सकता, जो फिर मिल सके । कबीरदास कहते हैं कि " ऐसा धन संचय करो, जो भविष्य में काम आ सके । जब काल आ जाता है, तब यह यहीं पड़ा रह जाता है । कोई धन बाँधकर अपने सिर पर रख कर ले जाता नहीं देखा गया । मरने पर तो खाली हाथ ही जाना पड़ता है । अत: जो धन साथ जा सके वही संचय करो । अर्थात् ऐसे पुण्य कर्मों का संचय करो जो तुम्हारे भावी जीवन में शुभ फल दे ।

" कबीर सो धन संचिए, जो आगे को होइ ।
सीस चढ़ाए पोटली, ले जात न देखा कोई ।। " [१४]

साथ जानेवाला धन शुभ कर्म ही हो सकते हैं । कबीर का संकेत है, परहित साधन की ओर । लोक-कल्याणार्थ निष्काम कर्म से यश तथा कीर्ति मिलेगी । वह तो जगत् में विद्यमान रहेगी और शुभ फल के साथ जाकर भावी जीवन को सुख पहुँचायेगी ।

अपने द्वारा संचित धन का उपयोग त्याग बुद्धि से करने का आदर्श कबीर ने प्रस्तुत किया है। वैभव संचय के लिए धन-लिप्सा प्रेरक भाव है। इसलिए कबीर ने संतोष के साथ जीवन यापना की शिक्षा दी है। जो कुछ भी भला-बुरा मिल जाए, उसी में संतुष्ट रहकर कर्तव्य पूर्ति में लगना श्रेयस्कार है।

कबीर की सम्पति और विपत्ति के विषय में यह धारणा है कि वैभव को देखकर गर्व से आनंदित नहीं होना चाहिए और विपत्ति को समझ पाकर रुदन नहीं करना चाहिए। दोनों को समान भाव से स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि जिस प्रकार सम्पति है, उसी प्रकार विपत्ति है।

सम्पति देखि न हरषिये, बिपति देखि न रोह।
ज्यू सम्पति त्यूं विपति है, करता करै सु होइ।। [१५]

ऊँचा-भवन, कनक-कामिनी, मान-सन्मान के चिह्न जैसे कि शिखर ध्वजाएँ इन सब से सन्तों के साथ पायी भिक्षा, मधुकरी और उनके साथ किया हुआ प्रभु-गुणगान भला है। ऐसा कबीरदास मानते हैं -

ऊँच भवन कनकामनी सिखरि धजा फहराइ।
ता ते भली मधुकरी संत संग गुण गाइ।। [१६]

कबीरदास को ऊपरी रंग-ढंग, बाह्याडम्बर, बिल्कुल मान्य नहीं है। वे मन की निष्ठा, श्रद्धा, लगन इन्हें ही मानते हैं चाहे कोई भले ही गृहस्थ हो या बैरागी। लेकिन उसके मन से अगर कामवासना नष्ट नहीं हो, तो उसके दुख की कोई सीमा नहीं है। यह इशारा कबीर ने अनेक बार दिया है।

कबीर कहता जात है, चेतें नहीं गँवार।
बैरागी गिरही कहा, कामी वार न पार।। [१७]

कबीरदास केवल वेश-भूषा से किसी को बैरागी कबूल नहीं करते। उन्होंने तो स्पष्ट किया है, अगर किसी बैरागी का वेश सिर्फ बैरागी के समान हो लेकिन उसका आचरण पाप-कर्म का हो, तो वह केवल बाह्यावरण से ही साधु दृष्टिगत होता

है, लेकिन वह अंत: करण से परम असाधु अर्थात् नीच होता है।

> ' कबीर भेष अतीत का, कर तुति करैं अपराध।
> बाहर दिसी साध गति, माहै मौह असाध।। '[१८]

कबीर सच्ची लगन, सच्ची श्रद्धा इसे ही महत्त्व देते हैं और इसका उदाहरण सहित वे स्पष्टीकरण करते हैं। गेरूवा वस्त्र पहन लेने से और जंगल में बसने से ही कोई बैरागी नहीं हो जाता, यदि वासनाएँ उसका साथ नहीं छोड़ती। गृहस्थ भी वीतराग हो सकता है अगर उसके मन में वैराग्य बसा हुआ हो। जैसे कि जन की अर्थात् गृही और बैरागी की सच्ची परिभाषा उनके मन के विश्लेषण पर आधारित है। ठीक वैसे ही जैसे गाने में रोना छिपा रह सकता है और रोने में गाना।

> ' गावन ही में रोज है, रोवन ही में राग।
> इक वैरागी ग्रिह करै, एक ग्रिही बैराग ।। '[१९]

कर्मशीलता —

कबीरदास अकर्मण्यता को कबूल नहीं करते थे। उनका सिद्धान्त है कि व्यक्ति को शारीरिक श्रम करना चाहिए। वे कर्मशीलता के पक्षपाती रहे। शारीरिक श्रमद्वारा धनोपार्जन तो होता ही है, साथ ही आत्मग्लानी भी नहीं होती। मनुष्य का चरित्र शुद्ध रहता है। उसके स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। जो व्यक्ति शारीरिक श्रम नहीं करते, उनका मन व्यर्थ के कार्यों में उलझा रहता है। उनका चरित्र गिर जाता है। उन्हें मानसिक रोग हो जाते हैं और व्यक्ति का स्वास्थ्य तो नष्ट होता ही है, उसका आचरण भी नष्ट होता है। ऐसा व्यक्ति जीवन आदर्श का पालन करने में सफल नहीं होता।

सेवा —

कबीर ने वैयक्तिक जीवन का सर्वश्रेष्ठ आदर्श निरूपित किया है। वे कर्म करना भगवत भक्ति ही समझते हैं, क्योंकि भगवान का निवास सभी में है, सेवक में

भी, सेव्य में भी । अत: लोकसेवा से भगवान की ही सेवा होती है।

' जो सेवक सेवा करे, ता संगि रमे रे मुरारि।' [२०]

प्रपंचों से अलग होकर सन्सार में किस प्रकार रहकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है ? इस प्राप्ति के लिए कबीर ने वैयक्तिक जीवन में आचारों की महत्ता निरुपित की है — वे इस प्रकार हैं—

' अहिंसा, सांच, अस्तेय, सन्तोष, धीरज, क्षमा सत्संग।'

अहिंसा —

कबीर ने जीव-हिंसा तथा उन्हें कष्ट देने वालों की और भर्त्सना की है। तामसिक साधकों के प्रति व्यंग्य से उन्होंने कहा है - जीव-हिंसा धर्म है और जीव हिंसा करने वाले धार्मिक हैं, मुनि हैं, तो फिर अधर्मी और कसाई कौन हैं ? इस प्रकार कबीर ने जीव-हिंसा वैयक्तिक जीवन के आचार में सब से बड़ा अधर्म माना है। कबीर के अनुसार ही महाभारत में भी अहिंसा को परमधर्म कहा गया है। प्रेम अथवा प्रीति-भाव अहिंसा धर्म के मूल हैं। प्रीति का अर्थ होता है प्रेम अथवा सहानुभूति। कबीर के अनुसार जिनके हृदय में न प्रेम है, न प्रेम का आस्वाद और जिनकी जिह्वा पर राम नाम भी नहीं है, वे मनुष्य इस संसार में व्यर्थ पैदा होकर नष्ट होते हैं।

' जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस , फुनि रसना नहीं राम।
ते नर इस संसार में, उपजि भये बेकाम।।' [२१]

कबीर ने प्रेम के साथ सभी के प्रति प्रेम-व्यवहार करना मानव का परम कर्तव्य माना है। इसलिए अहिंसा धर्म के लिए प्रेम-भाव आवश्यक तत्व है।

सांच —

अहिंसा के समान ही सत्य मन का सात्विक विचार है। कबीर के अनुसार सत्य वही है, जो स्थिर रहता है। परिवर्तनशील पदार्थ तो असत्य ही होते हैं।

' सांच सोई जो थिरह रहाई, उपजे विनसै झूठ ह्वै जाई।।' [२२]

कबीर ने सत्याचरण पर अधिक बल दिया है। उन्होंने केवल ब्रह्म ही को चरम सत्य कहा है अन्य सब तो मिथ्या है। जो साधक सर्वत्र सत्य ही को जानता है, उसे असत्य मार्ग पर चलना नहीं चाहिए। सत्याचरणशील मनुष्य कभी भी सत्य नहीं छोड़ता।

अस्तेय —

कबीर कहते हैं जो वस्तु अपनी नहीं है, जिस पर दूसरे का अधिकार है, बिना उसकी अनुमति के ले लेना चोरी है। सभी पदार्थ विश्वनियन्ता के द्वारा सभी प्राणियों की आवश्यकतानुसार उनके अलग-अलग भाग के अनुपात से निर्धारित किए गए हैं। सब को अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार उनका उपभोग करना चाहिए। जिसके लिए जितना निर्धारित हो, उसे उसी के अनुपात से मिलता है।

'जाको जेता निरम्या, ताकौं तेता होइ।
रती घटे न तिल बढ़े, जौ सिर कूटे कोई।।'[२३]

सन्तोष —

परिणाम अथवा फलाशा के विचार से रहित होकर स्वकर्तव्य को करते रहना, किसी वस्तु के अभाव पर खिन्न न होना, जिस स्थिति एवं अवस्था में रहने का संयोग हो जाय, उसी में सहर्ष रहना तथा किसी प्रकार भी अपनी इच्छा के वशीभूत न होना सन्तोष कहलाता है। कबीर ने सन्तोष को सर्वश्रेष्ठ धन निरूपित किया है। सन्तोष धन के समक्ष अन्य धन धूरि के समान है।

'जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान।'[२४]

धीरज —

धीरज व्यक्तिगत जीवन की सफलता का एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। जीवन में जलदबाजी या धैर्यविहीनता अत्यन्त कष्टकर होती है। अपनी साधना में साधक को धैर्यपूर्वक मग्न रहना चाहिए। उसे उसका फल अवश्य मिलेगा। बिना धीरज के जीवन सफल नहीं होता है। इसलिए कबीर ने इसकी उपयोगिता मानी है। कबीर की यह धारणा है कि माली वृक्ष को सौ घड़ों से रोज सिंचता है, पर उसमें फूल, फल तो

अपने समय पर ही आते हैं।

' धीरे - धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।।' [२५]

क्षमा —

क्रोध और धैर्य का फल क्षमा है। किसी के अपराध को क्षमा करने की प्रवृत्ति व्यक्तित्व की महत्ता का द्योतक है। इसीलिए कबीर ने क्षमा में ही ईश्वर का निवास माना है —

' जहाँ दया तहाँ धर्म है, जहाँ लोभ तहाँ पाप।
जहाँ क्रोध तहाँ काल है, जहाँ छिमा तहाँ आप।।' [२६]

सत्संग

कबीर का निश्चित मत है कि सत्संगति कभी भी निष्फल नहीं होती। उसका फल अवश्य मिलता है और उससे यश की प्राप्ति होती है। सत्संग को कबीर ने अपना अध्ययन ' माना है। साधुजन की सेवा और संपर्क से व्यक्ति के दोष दूर हो जाते हैं। दुर्बुद्धि का नाश हो जाता है और ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। कबीरदास साधु की संगति तत्काल करने को कहते हैं, क्योंकि वे दुर्गति दूर करते हैं और उन्हें सुमति बता देते हैं।

' कबीर संगति साधु की, बेगि करीजे जाइ।
दुरमति दूरि गवाँइसी, देसी सुमति बताइ।।' [२७]

साधु की संगति को कबीरदास ने गंधी की संगति के समान बताया है। जैसे गंधी के सहवास से हमें अपने आप सुगंध मिल जाती है, वैसे सन्तों के सहवास मात्र से ही हम भक्त बन जाते हैं।

निष्कर्ष —

कबीरदास के अनुसार सत् संगति व्यवहार ही इस जीवन का सार है और सब कुछ असार है। मनुष्य का मनुष्य से सद्व्यवहार ही धर्म है। मनु ने धार्मिक होने के लिए मनुष्य में दस गुणों (धृति,क्षमा,दम,चोरी न करना, शौच, इन्द्रियों पर नियंत्रण, बुद्धिशीलता, ज्ञान की उपलब्धि , सत्य और अक्रोध) का होना आवश्यक माना था। कबीर ने इन्ही गुणों का प्रचार और प्रसार भी किया था और लोगों को ग्रहण करने को बाध्य किया था। वे जिन्दगी भर गुणों की तलाश में लगे थे तथा जन-भाषा में इन गुणों का प्रचार भी कर रहे थे। वे समाज में प्रचलित व्यावहारिक भाषा के माध्यम से लोगों के व्यवहार को बदल रहे थे।

कबीरदास का कहना है कि बाह्याचार अर्थहीन है धर्म के नाम पर नहाना, उपवास रखना, तीर्थयात्रा पर जाना, जोर-जोर से ईश्वर-नमोच्चारण करना आदि पर कबीर ने तीव्र व्यंग्य किया और लोगों को धर्म के बारेमें जाग्रत किया। यहाँ कोई ऊँच-नीच नहीं है। सभी जगह भगवान का निवास होता है। हमें अपने मन को साफ रखना चाहिए। सब को समान समझना चाहिए।

कबीर जानते थे कि हिन्दू तथा मुसलमान सही धर्म को नहीं जानते हैं। उनकी आपस में लड़ाई अज्ञान के कारण है। कबीर ने मानव धर्म की स्थापना की है, जो कि प्रत्येक धर्म का मूल है। आज से बहुत पहले कबीर ने धर्म के जीवनीय पक्ष का समर्थन कर समग्र मानव समाज को एक नवीन तथा सशक्त दृष्टि प्रदान की थी। कबीर की धर्मप्राणता जीवनीय आस्था की संस्थापना में सन्निहित है, यही मर्मपूर्ण बात है।

कबीर ने सब को कर्म करने की चेतावनी दी। ऐसा कर्म नहीं जो राम-नाम-विहीन हो। वही कर्म, कर्म है जो 'बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय' होता है। ऐसा कर्म वही कर सकता है, जो स्वार्थहीन होता है। स्वार्थ का त्याग तभी संभव है, जब मन पर नियंत्रण रखा जाय। मन पर नियंत्रण तभी संभव है, जब मनुष्य इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर ले। अपनी इच्छाओं को कम कर सन्तोष धारण कर ले। तभी

उसमें सत्यशील और श्रध्दा का भाग जग सकता है। सत्यशीलता, दया और धर्म से मनुष्य नैतिकता धारण करता है। नैतिकता से वह दुर्गुणों का त्याग कर सकता है।

कबीर सभी जीवों में अभिन्नता देखते हैं, क्योंकि सब में तो वही परमतत्व है, सभी ब्रह्म स्वरूप हैं। सत्य, दया, क्षमा, धीरज आदि कबीर के आचरण स्वयं के साथ-साथ सारे समाज के उत्थान के लिए ही थे। उनका कहना था कि मनुष्य को गर्व नहीं करना चाहिए। जितना हमारे पास धन आदि हो, उसी में मनुष्य को सन्तोष करना चाहिए। सही मानव जीवन प्रतिष्ठा के लिए व्यक्ति को आचारनिष्ठ होना चाहिये।

संदर्भ सूचि

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृष्ठ क्रमांक	प्रकाशक,प्रकाशन एवं संस्करण
१	मनुस्मृति	संपादक देववाचस्पति श्री वासुदेववन		संस्करण १९६८ ६ । ९२
२	कबीर ग्रंथावली	संपा.डॉ.श्यामसुन्दरदास लेख `रमैणी`	१८६	नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी, संस्करण सं.२०४१ वि.
३	— वही —	`प्रस्तावना`	३६	
४	कबीर	डॉ.राजेन्द्रमोहन भटनागर	४१	भारतीय ग्रन्थ निकेतन,दरियागंज नयी दिल्ली, वर्ष : १९८५
५	कबीर	आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	२२१	राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली,पटना प्रथम संस्ककरण १९७१
६	कबीर	डॉ.राजेन्द्रमोहन भटनागर	४३	भारतीय ग्रन्थ निकेतन,दरियागंज नयी दिल्ली, वर्ष : १९८५
७	— वही —	,,	४४	—,,—

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृष्ठ क्रमांक	प्रकाशक,प्रकाशन एवं संस्करण
८	कबीर ग्रंथावली	संपा.डॉ.श्यामसुन्दरदास लेख `पद`	१५२	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, पंद्रहवीं संस्करण सं.२०४१ वि.
९	कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ.आचार्यप्रसाद त्रिपाठी	२८६	सरोज प्रकाशन इलाहाबाद-२ प्रथम संस्करण सितम्बर १९७४
१०	कबीर	डा.राजेन्द्रमोहन भटनागर	४६	भारतीय ग्रन्थ निकेतन,दरियागंज नयी दिल्ली, वर्ष १९८५
११	वैष्णव कबीर रहस्यवाद-मानवता	डा.हरिहरप्रसाद गुप्त	७८	भाषा-साहित्य-संस्थान,इलाहाबाद वर्ष जनवरी १९८६
१२	कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन	डा.आर्याप्रसाद त्रिपाठी	७५	सरोज प्रकाशन इलाहाबाद-२-, प्रथम संस्करण सितम्बर १९७४
१३	कबीर ग्रंथावली	संपा.डा.श्यामसुन्दरदास लेख `साखी`	४६	नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी पंद्रहवीं संस्करण, सं.२०४१ वि.

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृष्ठ क्रमांक	प्रकाशक,प्रकाशन एवं संस्करण
१४	कबीर ग्रंथावली	संपा.डा.श्यामसुन्दरदास 'लेख' साखी '	२६	नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी, पंद्रहवाँ संस्करण, सं.२०४१ वि.
१५	कबीर ग्रंथावली	डा.सावित्री शुक्ल डा.चतुर्वेदी	४९८	प्रकाशन केन्द्र लखनाऊ,प्रियंवदा प्रेस,आगरा
१६	संत कबीर	डा.रामकुमार वर्मा	९७	साहित्य भवन(प्रा.) लिमिटेड, इलाहाबाद, आठवी आवृत्ति, १९६७
१७	कबीर ग्रंथावली	सपा.डा.श्यामसुन्दरदास लेख' साखी '	४	नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी, पंद्रहवाँ,संस्करण, सं.२०४१ वि.
१८	-- वही -	,,	३८	,,
१९	-- वही -	,,	५६	,,
२०	कबीर ग्रंथावली	प्रो.पुष्पपाल सिंह	३५८	अशोक प्रकाशन, नई सड़क,दिल्ली, चतुर्थ संस्करण १९७२

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृष्ठ क्रमांक	प्रकाशक, प्रकाशन एवं संस्करण
२१	कबीर ग्रंथावली	संपा.डा.श्यामसुन्दरदास लेख` साखी `	५	नागरी प्रचारिणी वाराणसी, पंद्रहवाँ संस्करण, सं.२०४१ वि.
२२	कबीर ग्रंथावली	डा.सावित्री शुक्ल डा.चतुर्वेदी	८७६	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ प्रियंवदा प्रेस, आगरा
२३	कबीर ग्रंथावली	संपा.डा.श्यामसुन्दरसादस लेख` साखी `	४५	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पंद्रहवाँ संस्करण, सं.२०४१ वि.
२४	कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन	डा.आर्याप्रसाद त्रिपाठी	१०	सरोज प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सितम्बर, १९७४
२५	– वही –	,,	११	– वही –
२६	– वही –	,,	१२	– वही –
२७	कबीर ग्रंथावली	संपा.डा.श्यामसुन्दरदास लेख` साखी `	३८	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पंद्रहवाँ संस्करण, सं.२०४१ वि.